द वैनगार्ड फायर और जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, मद्रास

बनाम

एम/एस फ़्रेज़र और रॉस और अन्य।

(पी.बी.गजेंद्रगढ़कर, के.एन.वांचू और के सी दास गुप्ता,

न्यायाधिपतिगण)

4 मई. 1960

बीमा-कंपनी बीमा कारोबार बंद कर रही है-सरकार द्वारा कंपनी के मामलों की जांच का निर्देश देने वाला आदेश-वैधता- "बीमाकर्ता", का अर्थ-

व्यवसाय बंद होने के बाद बीमाकर्ता का दायित्व

विस्तार- "देनदारियाँ पूरी नहीं की गई और अन्यथा पूरी नहीं की गई हैं" -

सामान्य खंड अधिनियम, 1897, धारा 13-बीमा अधिनियम, 1938 (1938 का 4), धारा 2(9), 2डी, 7, 9, 33·

अपीलकर्ता कंपनी सन् 1941 से निगमन के उपरांत जीवन बीमा के अलावा विभिन्न श्रेणियों में बीमा व्यवसाय चला रही थी, लेकिन 1956 में कंपनी के शेयरधारकों की बैठक में बीमा व्यवसाय को बंद करने का प्रस्ताव पारित किया गया, तदनुसार, कंपनी द्वारा बीमा कंट्रोलर को दिनांक 01

जुलाई 1957 से बीमा व्यवसाय के दिए गए प्रमाणपत्र को निरस्त करने का आवेदन किया गया।

इस दौरान कंपनी के विरुद्ध सरकार को शिकायतें प्राप्त रही थी, जिस पर बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 33 के तहत भारत सरकार द्वारा बीमा कन्ट्रोलर को बीमा कंपनी के क्रियाकलापों की जांच कर रिपोर्ट पेश करने का आदेश दिनांक 17 जुलाई 1957 को दिया गया। कंपनी द्वारा इस आदेश की वैधता को चुनौती निम्न आधारों पर दी गई कि 1-चुंकि इसने सारा बीमा व्यवसाय बंद कर दिया था, केन्द्र सरकार अधिनियम की धारा 33 के अंतर्गत धारा 2(9) में परिभाषित कंपनी के क्रियाकलापों के मामले में जांच करने के लिए ऐसा आदेश पारित करने के लिए सक्षम नहीं है। ऐसा आदेश वास्तव में बीमा व्यवसाय करने वाली कंपनी के संबंध में दिया जा सकता है।

(2) कि इस तरह के आदेश को अधिनियम धारा 2 डी के तहत लागू नहीं कि जा सकता जबकि य प्रावधान उन मामलों में लागू है जब बीमाकर्ता द्वारा विभिन्न श्रेणियों में व्यवसाय किया जा रहा हो और उनमें से कुछ को बंद कर दिया गया और कुछ को नहीं किया गया

(3) ऐसा आदेश धारा 33 सपठित धारा 2 डी के तहत इस मामले में पारित नहीं किया जा सकता जबकि बीमा कंपनी का कोई दायित्व शेष नहीं रहा या इसका कोई प्रावधान नहीं किया गया।

(4) ऐसा आदेश अवैध है क्योंकि प्रथम दृष्टया केन्द्र सरकार संतुष्ट नहीं थी कि दायित्व शेष रहें हैं या उनका प्रावधान नहीं किया गया।

अभिनिर्धारित, (1) कि धारा 33 बीमा अधिनियम, 1938 मे बीमाकर्ता के शाब्दिक अर्थ में वास्तविक रूप में बीमा व्यवसाय करने वाले व्यक्ति ही शामिल नहीं है बल्कि जिन्होंने बाद में ऐसा व्यवसाय बंद कर दिया है।

(2) कि धारा 2 डी में ''बीमाकर्ता'' का अर्थ उस व्यक्ति से भी है जो बीमा का व्यवसाय कर रहा है और उसने ऐसा व्यवसाय बंद कर दिया है।

(3) धारा 2 डी में ''वर्ग'' हालांकि एकवचन में उपयोग किया गये हैं लेकिन उनमें बहुवचन भी शामिल है। यह प्रावधान उन मामलों में भी लागू है जहां बीमाकर्ता विभिन्न श्रेणियों में बीमा व्यवसाय कर रहा था और उसने सभी श्रेणियों में व्यवसाय बंद कर दिया।

(4) कि अन्यथा प्रावधान नहीं किया गया का आशय धारा 2 डी में उन दावों के दायित्व के संबंध में हैं जो बीमाकर्ता ने स्वीकार किये हैं या नहीं और ऐसी डिक्रि अंतिम रूप से पारित हुई या नहीं।

(5) धारा 2 डी के अंतर्गत संतुष्टि या अन्यथा उपबंधित जिनमें व्यवसाय बंद हो गया लेकिन दायित्व धारा 7 में व्यक्त जमा के बारे में नहीं कहता हो ऐसी जमा से ऊपर का दायित्व होगा।

(6) केन्द्र सरकार के अधिनियम की धारा 33 सपठित धारा 2 डी के तहत पारित आदेश प्रथम दृष्टया यह प्रकट करता है कि देनदारियां की पूर्ण रूप से तुष्टि नहीं हुई है या उनका ऐसा प्रावधान नहीं किया गया, केन्द्र सरकार के पास ऐसी सामग्री है जो जांच में स्पष्ट कर सके कि देनदारियों को पूर्ण नहीं किया गया।

सिविल अपील क्षेत्राधिकारः सिविल अपील क्रमांक का सं. 21/ 1960

मद्रास उच्च न्यायालय के सिविल रिट अपील नं. 67/1958,

निर्णय दिनांक 16 जनवरी 1959, जो कि उच्च न्यायालय के निर्णय व आदेश दिनांक 15 जुलाई, 1958 रिट याचिका संख्या 922/1957 से उत्पन्न हुआ

सी. बी. अग्रवाल, एस. एन. एंडले, जे. बी. दादाचंज

और रामेश्वर नाथ, अपीलार्थी की ओर से।

आर. गणपति अय्यर, एच. जे. उमरीगर, आर. एच. ढेबर

और टी. एम. सेन, प्रत्यर्थी संख्या 2 की ओर से।

4 मई, 1960. न्यायालय द्वारा निर्णय पारित

न्यायाधिपति श्री वांचू- यह अपील मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा प्रदत्त प्रमाण पत्र पर पेश हुई। अपीलार्थी कंपनी कई वर्गों में जीवन बीमा के अलावा बीमा व्यवसाय सितम्बर 1941 से निगमन के उपरांत कर रही है। दिनांक 15.10.1956 को अंशधारकों की विशिष्ट साधारण सभा में यह प्रस्ताव पारित किया गया कि बीमा कंपनी के सभी व्यवसाय को अविलम्बन किया जाता है और भविष्य में किसी प्रकार की बीमा पॉलिसी जारी नहीं की जाएगी। यह भी प्रस्ताव पारित किया गया कि बीमा के नये नवीनीकरण के आवेदनों को धारा 3 बीमा अधिनियम के तहत स्वीकार नहीं किया जाएगा। कंपनी केवल धन के उधार का ऋणी कंपनी के रूप में व्यवसाय करेगी। परिणामतः इन प्रस्तावों के बारे में कंपनी ने दिसम्बर 1956 में बीमा नियंत्रक को सूचित किया कि वे अपने बीमा व्यवसाय के पंजीयन के नवीनीकरण के लिए आवेदन नहीं कर रहे हैं। मई 1957 में नियंत्रक ने कंपनी को लिखा कि एक जुलाई 1957 से कंपनी का बीमा व्यवसाय से संबंधित प्रमाण-पत्र निरस्त माना जाएगा और इसे भारत के राजपत्र में प्रकाशित किया जाएगा।

यह प्रकट हुआ कि भारत सरकार को कंपनी के विरुद्ध शिकायतें प्राप्त हो रही थी, परिणामतः 17 जुलाई, 1957 को भारत सरकार ने अधिनियम की धारा 33 के तहत कंपनी के क्रियाकलापों के लिए बीमा नियंत्रक को

जांच करने व रिपोर्ट पेश करने का आदेश दिया, जिस पर नियंत्रक ने एमएस फ्रेजर एण्ड रॉस को ऑडिटर के रूप में जांच में सहयोग करने के लिए नियुक्त किया। इस बारे में कंपनी को सितम्बर, 1957 को सूचित किया गया। इस पर कंपनी ने नियंत्रक को लिखा कि अधिनियम की धारा 33 के तहत उसके विरुद्ध ऐसा आदेश नहीं दिया जा सकता क्योंकि उनक द्वारा बीमा व्यवसाय को बंद कर दिया गया है और प्रश्नगत आदेश बिना किसी क्षेत्राधिकार के है, नियंत्रक ने कंपनी को जवाब भेजा और अधिनियम की धारा 2डी की ओर ध्यान आकृष्ट कराया, जिसमें आदेश के औचित्यता के बारे में लिखा गया है। इस पर कंपनी ने अनुच्छेद 226 भारतीय सविधान के तहत आवेदन मद्रास उच्च न्यायालय के समक्ष पेश किया, जिसमें दो बिंदु मुख्य रूप से याचिका में उठाए गए। जिसमें प्रथम यह पेश किया गया कि कंपनी ने सभी बीमा व्यवसायों को बंद कर दिया है, इसलिए धारा 33 के तहत ऐसा आदेश नहीं दिया जा सकता, यह प्रावधान उन्हीं कंपनियों पर लागू है जो वास्तव में बीमा व्यवसाय कर रही हैं, यहां तक कि धारा 2डी के तहत भी ऐसा आदेश नहीं दिया जा सकता। दूसरा बिंदू यह दिया गया कि अधिनियम की धारा 33 सपठित धारा 2डी के तहत ऐसा आदेश कंपनी के मामले में पारित नहीं किया जा सकता, क्योंकि कंपनियों कि कोई देनदारी शेष नहीं है, और न ही कोई प्रावधान है। एमएस फ्रेजर और रॉस तथा साथ ही नियंत्रक याचिका में पक्षकार बनाए गए। नियत्रक द्वारा याचिका का विरोध किया गया। उनकी तरफ से यह तर्क

रहा कि प्रकरण पूरी तरह से अधिनियम की धारा 2 डी की परिधि में आता है। धारा 33 के अंतर्गत पारित किया गया आदेश वैध है, क्योंकि इसमें ऐसा दर्शित नहीं है कि देनदारियां पूरी नहीं हुई या उनका प्रावधान नहीं किया गया।

विद्वान एकल जज ने यह निर्धारित किया कि अधिनियम की धारा 33 डी सपठित धारा 2 डी के तहत कंपनी के विरुद्ध ऐसा आदेश पारित किया जा सकता है तथा यह दर्शित नहीं किया गया कि कंपनी ने देनदारियां पूरी नहीं की या उनका प्रावधान नहीं किया गया। उनके द्वारा रिट याचिका खारिज की गई। इसके उपरांत कंपनी ने अपील पेश की, जो भी निरस्त हुई। खणडपीठ सारवान रूप से सहमत थी कि एकल पीठ द्वारा लिया गया निष्कर्ष सही था, जिस पर कंपनी द्वारा इस न्यायालय मे अपील के लिए प्रमाण-पत्र आवेदित किया गया जो उनको प्राप्त हुआ। इस प्रकार यह प्रकरण हमारे समक्ष पेश हुआ।

श्री अग्रवाल कंपनी की ओर से उपस्थित होकर वही दो बिन्दू हमारे समक्ष पेश किए गए। 1938 में अधिनियम पारित किया गया जो बीमा व्यवसाया करने वाले व्यक्तियों को नियंत्रित करता है। धारा 2 (9) बीमाकर्ता को परिभाषित करता है, इसमें व्यक्ति न होकर निगमित निकाय है, जिसका गठन प्रवतर्नशील विधि के तहत किया गया, और ऐसी कंपनी भारतीय कंपनी अधिनियम 1913 के अंतर्गत आती है। धारा 3 बीमा के

व्यवसाय करने वाले व्यक्तियों के पंजीयन के बारे में प्रावधान करती है और बिना पंजीयन प्रमाण-पत्र के विशिष्ट श्रेणी का बीमा व्यवसाय बिना नियंत्रक की अनुमति के नहीं किया जा सकता। धारा 3 (4) नियंत्रक को प्रमाण-पत्र निरस्त करने की शक्तियां देती है, जिसके कारण वर्णित हैं और धारा 3 (5 बी) यह व्यक्त करती है कि जब पंजीयन निरस्त हो जाए तो बीमा की नई संविदा नहीं की जा सकती लेकिन निरस्त होने से पूर्व के संविदा के अधिकारों व दायित्वों को धारा 5 डी के प्रावधानों के अनुसार पूर्ण किया जाएगा कि जैसे कि निरस्तीकरण हुआ ही नहीं। बीमा धारकों के सुरक्षा हितों के लिए धारा 7 में यह प्रावधान है कि बीमाकर्ता द्वारा विभिन्न श्रेणी के व्यवसायों के लिए जमा की जाएगी। धारा 8 ऐसी धारा 7 के तहत बताई गई जमाओं को बीमाकर्ता की आस्तियों के रूप में बताता है लेकिन इस पर किसी प्रकार का प्रभार आदि नहीं होगा और न ही किसी दायित्व के उनमोचन के लिए होगा जो बीमा पॉलिसियों के दायित्वों से भिन्न हो और न ही किसी डिक्री के निष्पादन में कुर्की के योग्य होगा, ऐसी डिक्री के अन्यथा जो बीमा पॉलिसी धारक के ऋण के संबंध में हो। धारा 9 (1) यह कहती है कि जहां बीमाकर्ता का भारत में व्यवसाय किसी श्रेणी का बंद हो गया है तो धारा 7 के तहत जमा और उसकी भारत में देनदारियों को संतुष्ट कर दिया गया है या प्रावधान कर दिया गया है तब न्यायालय में आवेदन पेश होने पर ऐसी जमाओं बीमाकर्ता को लौटाया जाएगा जो बीमावर्ग की नहीं है जिन्हें वह जारी रखता है। धारा 10 के तहत

बीमाकर्ता एक से अधिक श्रेणियों में व्यवसाय करता है तो उसे पृथक खातें रखने होंगे। जमा और प्राप्ति की रसीद पृथक होगी। धारा 33 (1) जिससे हम प्रत्यक्ष संबंधित हैं जो निम्न प्रकार हैंः-

> ''केन्द्र सरकार किसी भी समय लिखित में सीधे नियंत्रक या किसी अन्य विशिष्ट व्यक्ति को बीमाकर्ता के क्रियाकलापों के मामलें में जांच का आदेश दे सकेगी और ऐसी जांच रिपोर्ट को केन्द्र सरकार तलब कर सकेगी।
>
> यह प्रावधान किया गया है कि नियंत्रक या ऐसा विशिष्ट व्यक्ति आवश्यक समझे तो अंकेक्षक या बीमांकक को जांच में सहयोग करने के लिए नियुक्त कर सकती है।''

धारा 2 डी यह प्रावधान करता है कि -

> ''प्रत्येक बीमाकर्ता बीमा व्यवसाय के किसी भी वर्ग के संबंध में इस अधिनियम के सभी प्रावधानो के अधीन होगा, जब तक कि उस वर्ग के व्यवसाय के संबंध में भारत में उसकी देनदारियां असंतुष्ठ रहती हैं और उनका अन्यथा प्रावधान नहीं किया गया है।''

श्री अग्रवाल का यह तर्क है कि धारा 33 व धारा 2 डी दोनों एक बीमाकर्ता को संदर्भित करते हैं जिन्हें धारा 2 (9) बीमा व्यवसाय करने वाले व्यक्ति के रूप में परिभाषित किया गया है। उनका यह तर्क है कि

जैसे ही बीमाकर्ता बीमा व्यवसाय को पूर्ण रूप से बंद कर देता है तो वह बीमाकर्ता नहीं रह जाता, उस पर अधिनियम के प्रावधान नहीं लागू होते हैं। धारा 33 केन्द्र सरकार को ऐसी बीमा कंपनी के लिए जांच कराने की शक्ति देती है जो वास्तव में बीमा व्यवसाय कर रही है। धारा 2डी यह कहती है कि बीमाकर्ता ने किसी एक श्रेणी का बीमा व्यवसाय बंद कर दिया है और उसकी देनदारियां तुष्ट नहीं हुई है, उस श्रेणी वाले बीमा व्यवसाय को जारी रखा गया है और कुछ को बंद कर दिया गया है। धारा 33 व 2डी को साथ-साथ अध्ययन करने पर यह प्रकट होता है कि धारा 33 के तहत ऐसा बीमाकर्ता के विरुद्ध आदेश पारित नहीं किया जा सकता जिसने अपना बीमा व्यवसाय पूर्णतया बंद कर दिया है।

तर्क का मुख्य आधार अधिनियम की धारा 2 (9) में बीमाकर्ता की परिभाषा है, यह बताया गया है कि परिभाषा बीमाकर्ता का अर्थ विस्तृत स्वरूप का है, यह सामान्य रूप से स्वीकार किया गया है कि बीमाकर्ता को अधिनियम में इस रूप में परिभाषित किया गया है कि ऐसा व्यक्ति या निगमित निकाय आदि जो बीमा व्यवसाय करते हैं लेकिन धारा 2 के आरम्भ में शब्द यह है कि इसी अधिनियम में जब तक कि विषय या संदर्भ में कुछ भी प्रतिकूल न हो तब विभिन्न परिभाषा खण्ड आते हैं, जिनमें से 9 एक है। यह सुस्थापित है कि सभी वैधानिक परिभाषाओं या संक्षिप्ताक्षरों को उन परिभाषा खण्डों में व्यक्त की गई विभिन्न योग्यताओं के अधीन पढ़ा जाना चाहिए जिन्होंने उन्हें बनाया है, यह भी हो सकता है

कि यहां परिभाषा सम्पूर्ण है वहां परिभाषित शब्द का अर्थ एक निश्चित माना जाए। यह सम्भव है कि किसी विषय या संदर्भ के आधार पर अधिनियम के विभिन्न अनुभागों में शब्द का कुछ अलग अर्थ हो। इसलिए कानून में सभी परिभाषाएं आमतौर पर वर्तमान मामले में नियुक्त शब्दों के समान योग्य शब्दों से शुरू होती है जब तक कि विषय या संदर्भ में कुछ भी प्रतिकूल न हो। इसलिए अधिनियम की विभिन्न धाराओं में बीमाकर्ता शब्द का अर्थ जानने में आमतौर पर वहीं अर्थ दिया जाना चाहिए जो परिभाषा खण्ड में दिया गया है लेकिन यह अनन्य नहीं है और अधिनियम में ऐसे अनुभाग हो सकते हैं जहां उस विषय या संदर्भ के कारण अर्थ को हटाना पड़ सकता है, जिसमें शब्द का उपयोग किया गया है और जो परिभाषा अनुभाग में प्रारंभिक वाक्य को प्रभावी करेगा, अर्थात् जब तक कि विषय या संदर्भ में कुछ भी प्रतिकूल न हो। इस योग्यता को ध्यान में रखते हुए न्यायालय को न केवल शब्दों को देखना है बल्कि ऐसे मामले से संबंधित संदर्भ संयोजन और ऐसे शब्दों के उद्देश्य को भी देखना है और शब्दों के उपयोग से व्यक्त किए जाने वाले अर्थ की व्याख्या ऐसी परिस्थितियों में करनी है। हालांकि आमतौर पर अधिनियम में प्रयुक्त शब्द बीमाकर्ता का अर्थ वास्तव में बीमा का व्यवसाय करने वाला व्यक्ति या निगमित निकाय होगा, या यह हो सकता है कि कुछ वर्गों में इस शब्द का कुछ अलग अर्थ हो सकता है।

अधिनियम की कुछ धाराओं के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाएगा कि बीमाकर्ता शब्द का उपयोग न केवल वास्तव में बीमा का व्यवसाय करने वाले व्यक्तियों के लिए किया गया है बल्कि ऐसे व्यक्तियों के लिए भी किया गया है जो इसे जारी रखने का आशय रखते हैं। ऐसे व्यक्ति बीमा कारोबार कर रहे थे लेकिन वास्तव में उन्होंने शुरू नहीं किया और एक व्यक्ति जो बीमा का कारोबार कर रहा था लेकिन उसने ऐसा करना बंद कर दिया। उदाहरण के लिए धारा 3 (2) पंजीयन के आवेदन से संबंधित है जो स्वाभाविक रूप से बीमा व्यवसाय वास्तव में आरम्भ होने से पहले किया जाना है। उपबंध बी में आवेदन के साथ उन निदेशकों के नाम, पते, व्यवसाय यदि कोई हो तो संलग्न किया जाएगा जहां बीमाकर्ता भारतीय कंपनी अधिनियम के तहत निगमित कंपनी है। यहां बीमाकर्ता शब्द का उपयोग उस कंपनी को इंगित करने के लिए किया गया है जो वास्तव में बीमा का व्यवसाय नहीं कर रही है, लेकिन ऐसा करने का इरादा रखती है और पंजीयन के लिए आवेदन कर रही है। इसके अलावा धारा 3 (2) (ई) में भी इसका संबंध पंजीयन के आवेदन के लिए है जिसमें बीमाकर्ता के व्यवसाय का मुख्य स्थान या अधिवास भारत के बाहर है तो आवेदन के साथ बीमाकर्ता के प्रमुख अधिकारी द्वारा शपथ-पत्र द्वारा विवरण सत्यापित कर भेजना होगा जिसमें विभिन्न आवश्यकताएं बताई गई हैं। यहां फिर से शब्द बीमाकर्ता का उपयोग इच्छुक बीमाकर्ता के लिए किया गया है क्योकि बीमा का व्यवसाय धारा 3 (2) के तहत किए गए आवेदन पर

पंजीकरण प्रमाण-पत्र दिए जाने के बाद ही शुरू होगा। फिर धारा 9 में यह प्रावधान किया गया है कि जहां बीमाकर्ता ने व्यवसाय करना बंद कर दिया है तो न्यायालय बीमाकर्ता के आवेदन पर उसे धारा 7 के तहत की गई जमाराशि वापस करने का आदेश दे सकता है। इससे प्रकट होता है कि बीमाकर्ता वास्तव में बीमा का व्यवसाय नहीं कर रहा है, अभी भी उसे बीमाकर्ता माना जाता है और उसके आवेदन पर जमा राशि उसे वापस की जा सकती है। फिर से धारा 55 जो किसी बीमा कंपनी के समापन या किसी अन्य बीमाकर्ता के दिवालिया होने से उत्पन्न स्थिति से संबंधित है यह प्रावधान करता है कि बीमाकर्ता की संपत्तियों और देनदारियों का मूल्य इस तरह से और ऐसे आधार पर सुनिश्चित किया जाएगा जिसे परिसमापक या दिवालियेपन में प्रासकर्ता उचित समझता है। इस अनुभाग में बीमाकर्ता शब्द का उपयोग किसी व्यक्ति या निगमित निकाय आदि के लिए किया गया है जो वास्तव में बीमा का व्यवसाय नहीं कर रहा है और परिसमापन में चला गया है या दिवालिया हो गया है। इसलिए यद्यपि बीमाकर्ता शब्द को लिए जाने वाला सामान्य अर्थ परिभाषा खण्ड 2 (9) में दिया गया है और बीमा व्यवसाय करने वाले किसी व्यक्ति या निगमित निकाय आदि को संदर्भित करता है, यह शब्द अधिनियम के कुछ प्रावधानों के संदर्भ में किसी भी इच्छुक बीमाकर्ता या क्वान्डम बीमाकर्ता को भी संदर्भित कर सकता है। इसलिए यह तर्क है कि बीमाकर्ता शब्द का उपयोग धारा 33 और धारा 2 डी केवल उन्हीं बीमाकर्ताओं पर लागू हो सकती हैं जो

वास्तव में व्यवसाय कर रहें हैं। वे आवश्यक रूप से सफल नहीं हो सकते, हमें यह देखना होगा कि क्या इन प्रावधानों के संदर्भ में बीमाकर्ता में वह व्यक्ति भी शामिल होगा जो बीमाकर्ता था लेकिन उसने अपना व्यवसाय बंद कर दिया है।

जैसा कि हमने पहले ही कहा है कि पॉलिसी धारकों और आम जनता के हित में बीमा के व्यवसाय को नियंत्रित करने के लिए यह अधिनियम पारित किया गया और धारा 33 स्पष्ट रूप से यह प्रावधान करती है कि केन्द्र सरकार अधिनियम की नीतियों को आगे बढ़ाने के लिए किसी भी बीमाकर्ता के मामलों की जांच का आदेश दे सकती है। क्या इन परिस्थितियों में यह कहा जा सकता है कि धारा 33 केवल उन बीमाकर्ताओं पर लागू होता है जो वास्तव में व्यवसाय कर रहे हैं, न कि उन बीमाकर्ताओं पर जिन्होंने अपना व्यवसाय बंद कर दिया है? यदि अधिनियम की नीति को लागू करना है और पॉलिसी धारकों एवं आम जनता की रक्षा करनी है तो अपना व्यवसाय बंद करने वाले बीमाकर्ता के मामलों की जांच करने की आवश्यकता आदि है क्योंकि हो सकता है कि उन्होंने ऐसा बेईमानी से किया हो इसलिए हमारी यह राय है कि बीमाकर्ता शब्द जैसा कि धारा 33 में न केवल उस व्यक्ति को संदर्भित करता है जो वास्तव में व्यवसाय कर रहा है बल्कि उसके लिए भी इस धारा के संदर्भ में और अधिनियम की नीति और उन उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए जिनके लिए अधिनियम द्वारा परिकल्पित नियंत्रण बीमाकर्ताओं पर लगाया

गया था उन बीमाकर्ताओं को भी संदर्भित करता है जो बीमा का कारोबार कर रहे थे लेकिन उन्होंने बंद कर दिया है। इसके अलावा यदि कोई संदेह हो कि क्या धारा 33 में बीमाकर्ता शब्द उन बीमाकर्ताओं को भी संदर्भित करता है जिन्होंने अपना व्यवसाय बंद कर दिया था। हमारी राय में यह संदेह पूरी तरह से धारा 2डी से दूर हो गया है। इस धारा में प्रावधान है कि प्रत्येक बीमाकर्ता बीमा व्यवसाय के किसी भी वर्ग के संदर्भ में अधिनियम के सभी प्रावधानों के अधीन होगा जब तक की उस वर्ग के व्यवसाय के संबंध में भारत में उसका दायित्व असंतुष्ट रहता है या अन्यथा प्रदान नहीं किया जाता, जाहिर तौर पर उन बीमाकर्ताओं पर लागू होती है जिन्होंने अपना व्यवसाय बंद कर दिया है। इस धारा को अधिनियमित करना आवश्यक नहीं था कि यदि बीमाकर्ता शब्द का अर्थ वास्तव में बीमा का व्यवसाय करने वाला व्यक्ति भी है क्योंकि अधिनियम के प्रावधान ऐसे व्यक्ति पर अनुपातिक शक्ति से लागू होते हैं इसलिए जब बीमाकर्ता शब्द धारा 2डी में प्रयुक्त है तब इसका मतलब यह होना चाहिए कि वह व्यक्ति जो बीमा का व्यवसाय कर रहा था लेकिन उसने इसे बंद कर दिया है, यदि ऐसा है तो धारा 33 जो जांच का प्रावधान करती है ऐसे बीमाकर्ता पर लागू होगी जिसने अपना व्यवसाय धारा 2डी के अनुसार बंद कर दिया है।

श्री अग्रवाल आगे यह तर्क देते हैं कि धारा 2डी केवल उन मामलों मे लागू होगा जहां एक बीमाकर्ता बीमा व्यवसाय के विभिन्न वर्गों को चला रहा था उन में से कुछ को बंद कर दिया था लेकिन सभी को नहीं

किया था। उनका तर्क है कि धारा में यह प्रावधान है कि बीमाकर्ता बीमा व्यवसाय के किसी भी वर्ग के संबंध में अधिनियम के प्रावधानों के अधीन रहेगा जब तक कि व्यवसाय के उस वर्ग के संबंध में उसकी देनदारियां असंतुष्ट रहती है या अन्यथा प्रदान नहीं की जाती है। उनके अनुसार यह बीमा व्यवसाय के कई वर्गों मे से केवल कुछ को बंद करने पर विचार करता है, सभी को नहीं। हालांकि हमें इस खण्ड में इस्तेमाल किये गये शब्दों को केवल उस मामले तक सीमित करने का कोई कारण नहीं दिखता है, जहां व्यवसाय के कई वर्गों के कुछ बंद हो गए हैं और अन्य जारी हैं, धारा 13 सामान्य खण्ड अधिनियम 1897 के अनुसार सभी केन्द्रीय अधिनियमों और विनियमों जब तक विषय या संदर्भ में कुछ भी प्रतिकूल न हो तो एकवचन में शब्दों में बहुवचन शामिल होंगे और ऐसा ही इसके विपरित होगा। यद्यपि धारा 2 डी एकवचन में बीमा व्यवसाय के किसी एक वर्ग की बात करता है, जिसमें बहुवचन भी शामिल है और बीमा व्यवसाय के सभी वर्गों को संदर्भित करेगा। श्री अग्रवाल यह तर्क नहीं देते हैं कि जहां उदाहरण के लिए व्यवसाय के चार वर्ग चल रहे हैं और उनमें से तीन बंद है और एक जारी है तो यह धारा लागू नहीं होगी लेकिन उनका यह तर्क है कि कम से कम एक को जारी रहना चाहिए और यदि सभी बंद हो जाते है तो यह धारा लागू नहीं होगी। हमें यह समझ में नही आता कि यदि धारा लागू होती है भले ही वर्ग शब्द एकवचन में है ऐसे मामले में

जहां तीन वर्ग बंद है और एक जारी है तो इसे ऐसे मामले में लागू

नहीं होना चाहिए जहां सभी चारों वर्ग बंद हैं। हमें इस संदर्भ में कोई प्रतिकूलता नहीं दिखती है, यदि सभी वर्गों के व्यवसाय बंद हो जाते हैं तो बीमाकर्ता अधिनियम के सभी प्रावधानों के अधीन होगा जब तक कि सभी वर्गों के किसी भी व्यवसाय के संबंध में भारत में उसकी देनदारियां असंतुष्ट रहती है या अन्यथा इनके लिए प्रदान नहीं की जाती है। धारा 2डी को पढ़ने पर कोई संदेह नहीं हो सकता कि एक बीमाकर्ता जिसने अपने बीमा व्यवसाय के सभी वर्गों को बंद कर दिया है वे ऐसे वर्गों के संदर्भ में अधिनियम के सभी प्रावधानों के अधीन रहता है जब तक कि भारत में उसकी देनदारियां असंतुष्ट रहती हैं या उनके लिए प्रावधान नहीं किया गया है। इसलिए धारा 33 निश्चित रूप से ऐसे मामलों पर लागू है जहां बीमा व्यवसाय के सभी वर्ग तब तक बंद कर दिए गए हैं जब तक देनदारियां असंतुष्ट रहती हैं या अन्यथा प्रदान नहीं की जाती हैं। अतः अपीलकर्ता का पहला तर्क कि धारा 33 के तहत किसी जांच का आदेश नहीं दिया जा सकता जिसमें बीमा व्यवसाय कि सभी श्रेणियों को बंद कर दिया है, विफल हो गया है।

अब दूसरे विवाद की ओर मुड़ते हुए अपीलार्थी की ओर से तीन गुना तर्क है, जिसमें सबसे पहले यह आग्रह किया गया है कि कोई आदेश केन्द्र सरकार द्वारा धारा 33 सपठित धारा 2डी के तहत जब दिया जा सकता है जब देनदारियों को पूरा नहीं किया गया है या अन्यथा प्रावधान नहीं किया

गया है और आदेश में प्रथम दृष्टया यह दिखना चाहिए कि केन्द्र

सरकार ने मामले के हर पहलू पर विचार किया था और इस निष्कर्ष पर पहुंची थी कि देनदारियां असंतुष्ठ है या अन्यथा इनका प्रावधान नहीं किया गया। इसके अलावा वर्तमान आदेश में यह दिखाने के लिए कुछ भी नहीं है कि केन्द्र सरकार ने कभी भी मामले के इस पहलू पर विचार किया और संतुष्ट थी कि अपीलार्थी कंपनी की देनदारियां असंतुष्ट रही या इनका प्रावधान नहीं किया गया। इसमें कोई संदेह नहीं है कि आदेश के इस बिंदू पर पूरी तरह से मौन है। यह केवल दिनांक 15 अक्टुबर, 1957 के पत्र में था, जिसे सहायक नियंत्रक ने यह बताया था कि अधिनियम की धारा 2 डी और मामले के इस पहलू का उल्लेख किया गया। हमें उचित लगता है कि जब कोई आदेश अधिनियम की धारा 33 सपठित धारा 2 डी के तहत पारित किया जा रहा हो तो प्रथम दृष्ट्या यह प्रदर्शित होना चाहिए कि केन्द्र सरकार प्रथम दृष्ट्या संतुष्ट थी कि देनदारियां असंतुष्ट रही हैं या अन्यथा इसके लिए प्रावधान नहीं किया गया, यह केवल तभी है जब देनदारियां संतुष्ठ नही हुई है या अन्यथा इसके लिए धारा 33 सपठित धारा 2 डी के तहत आदेश के तहत जिसने व्यवसाय बंद कर दिया गया। हम प्रथम दृष्ट्या शब्द का उपयोग सलाहपूर्वक करते हैं कि क्योंकि ऐसा लगता है कि उच्च न्यायालय में यह सुझाव दिया गया है कि धारा 33 के तहत कोई आदेश तब तक पारित नहीं किया जा सकता जब तक कि देनदारियां असंतुष्ट रही हो या उनके लिए प्रावधान नहीं किया गया हो। यह स्पष्ट है कि ऐसा प्रमाण बीमाकर्ता के मामलों की जांच के बाद में ही उपलब्ध

होगा। इसलिए इस क्रम में धारा 2डी व्यावहारिक हो सकती है, इसके तहत इतना आवश्यक है कि केन्द्र सरकार ऐसी प्रथम दृष्ट्या जांच के बाद संतुष्ट हो जाए क्योंकि वह आवश्यक समझती है कि यह मानने का कारण है कि जिस बीमाकर्ता ने अपना व्यवसाय बंद कर दिया है उसकी देनदारियां असंतुष्ट है या अन्यथा प्रावधान नहीं किया गया है, इस पर प्रथम दृष्ट्या निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए केन्द्र सरकार बीमाकर्ता से उसके विरुद्ध प्राप्त शिकायतों के संबंध में पूछताछ कर सकती है, लेकिन तथ्य यह है कि आदेश में प्रथम दृष्ट्या यह दर्शाया नहीं गया है कि केन्द्र सरकार ने इस मामले के पहलू पर विचार किया है, इससे स्थिति खराब नहीं होगी यदि इसे चुनौती देने के लिए की गई बात की कार्यवाही में यह दिखाया जाता है कि केन्द्र सरकार के समक्ष ऐसी सामग्रियां थी जो प्रथम दृष्ट्या इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए उचित ठहराये कि देनदारियों को संतुष्ट किया गया या अन्यथा प्रावधान किया गया और इसलिए मामलों की जांच की मांग की गई थी। वर्तमान मामले में हमें रिकॉर्ड की सामग्रियों से पता चलता है कि केन्द्र सरकार के समक्ष उन लोगों की शिकायत थी जिनके कंपनी के विरुद्ध दावे थे, जाहिर तौर पर उन शिकायतों को कंपनी को भेजा गया था और ऐसा नहीं लगता कि कंपनी ने केन्द्र सरकार को संतुष्ट किया कि शिकायतें अनुचित थी, इस स्थिति में कंपनी द्वारा अपना बीमा कारोबार बंद करने के बाद जुलाई, 1957 में जांच का आदेश दिया गया था। इसके अलावा रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्रियों से ऐसा प्रतीत होता है कि अब

भी कंपनी के विरुद्ध लगभग एक लाखा रूपए के दावे लम्बित हैं, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि जुलाई, 1957 में जब आदेश दिया गया था तब कंपनी की कोई देनदारी बकाया नहीं थी पूरी नहीं की गयी थी या अन्यथा प्रावधान नहीं की गयी थी। इन परिस्थितियों में आदेश को गलत नहीं माना जा सकता, क्योंकि यह पटल पर गलत नहीं दिखाई देता। कंपनी के विरुद्ध देनदारियां थी जो असंतुष्ट थी या जिनका प्रावधान नहीं किया गया।

दूसरे स्थान पर यह आग्रह किया गया कि देनदारियों को संतुष्ट करने के लिए या अन्यथा प्रावधान करने का कोई सवाल ही नहीं हो सकता जब तक कि देनदारियों का पता नहीं लगाया जाता और या तो स्वीकार नहीं किया जाता या साबित नहीं किया जाता। दूसरे शब्दों में तर्क यह है कि केवल वे देनदारियां जो बीमाकर्ता के द्वारा स्वीकार की जाती है या जिनके लिए उसके विरुद्ध डिक्री की गई है और डिक्री अंतिम हो गई है, जिसे यह तय करने में ध्यान रखा जा सकता है कि देनदारियां असंतुष्ट रही है या अन्यथा इसका प्रावधान नहीं किया गया है, यह आग्रह किया गया कि केवल उन्हीं देनदारियों को संतुष्ट किया जा सकता है जो सुनिश्चित हैं और या वे निर्विवादित हैं या साबित हैं और यही बात उनके लिए अन्यथा प्रदान किये जाने के लिए लागू होती है। यह सत्य है कि केवल उन्ही देनदारियों को संतुष्ट किया जा सकता है जिनका पता लगाया गया है और या तो स्वीकार किया गया है या साबित किया गया है लेकिन यह इस बात का

पालन नहीं करता कि अन्यथा प्रावधान भी केवल उन देनदारियों का होना चाहिए जो सुनिश्चित हैं और या तो स्वीकार किए गए हैं या साबित किए गए हैं। यदि ऐसा होता तो व्यवसाय बंद करने वाला बेईमान बीमाकर्ता धारा 33 सपठित धारा 2डी के प्रावधानों से उसके विरुद्ध किए गए सभी दावों को खारिज करके प्रावधानों से बाहर यह कहकर निकल सकता था कि ऐसी कोई देनदारियां नहीं है जो असंतुष्ट रही है या अन्यथा अप्रदत्त रहीं है। इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि यदि इन प्रावधानों उस उद्देश्य की पूर्ति करनी है जिसके लिए उन्हें अधिनियमित किया गया था (अर्थात् पॉलिसी धारकों और आम जनता के हितों की सुरक्षा) तो शब्द अन्यथा प्रावधान नहीं किए गए धारा 2डी में बीमाकर्ता के खिलाफ दावों की प्रकृति में देनदारियों का उल्लेख होना चाहिए चाहे बीमाकर्ता उन्हें स्वीकार करता है या नहीं और उनके संबंध में अंततः डिक्री पारित की गई है या नहीं, धारा 2डी में यह प्रावधान करने का आशय है कि यह सुनिश्चित किया जाये कि बंद किए गए बीमा व्यवसाय से उत्पन्न होने वाले संभावित दावों को बीमाकर्ता जिसने अपना व्यवसाय बंद कर दिया है, यह कहने से पहले प्रदान किया जाता है कि वह अधिनियम के सभी प्रावधानों द्वारा शासित नहीं है, इसलिए इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि जब अन्यथा प्रावधान किया जाना चाहिए, यह उन संभावित दावों के संबंध में होना चाहिए जो बंद हो चुके बीमा व्यवसाय से उत्पन्न होने की संभावना है। वर्तमान मामले में भी कंपनी स्वीकार करती है कि लगभग एक लाख रूपए के

संभावित दावे लम्बित हैं और उन परिस्थितियों में जब तक वह संतुष्ट नहीं हो जाते या दिखाया नहीं जाता तो कंपनी पर अधिनियम के प्रावधानों सहित धारा 33 के प्रावधान लागू होंगे।

दूसरे तर्क के समर्थन में अंतिम तर्क यह है कि देनदारियों के लिए अन्यथा प्रावधान किया गया है। यह बताया गया है कि कंपनी ने 3,94,000 रूपए अधिनियम की धारा 7 के तहत देनदारियों के भुगतान के लिए सुरक्षा के रूप में जमा कराए हैं। इसलिए जब ऐसी देनदारियां उस राशि से अधिक नहीं लगती है जिसके लिए अन्यथा प्रावधान किया गया है , इस प्रकार का प्रश्न उठाया गया है कि क्या कंपनी धारा 7 के तहत सुरक्षा के तहत जमा का ध्यान में रखने का हकदार है तथा देनदारियों के लिए अन्यथा प्रावधान किया गया है। नियंत्रक की ओर से यह तर्क है कि जब अधिनियम'' ''

कंपनी द्वारा धारा 7 के तहत की गई सुरक्षा जमा राशि से अधिक होना चाहिए। यह धारा 8 से प्रकट होता है कि जमा राशि बीमाकर्ता द्वारा जारी बीमा पॉलिसी से उत्पन्न देनदारियों के निर्वहन के लिए उपलब्ध है जब तक कि ऐसी देनदारी असंतुष्ट रहती है, लेकिन भले ही पॉलिसी धारक द्वारा पॉलिसी के तहत उस दायित्व के आधार पर डिक्री प्राप्त की गई हो, वह इस जमा राशि का कोई भी हिस्सा तब तक कुर्क कराने का हकदार नहीं है जब तक कि वह यह नहीं दिखाता कि वह डिक्री को किसी अन्य तरीके से प्राप्त करने में विफल रहा है। आगे ऐसा प्रतीत होता है कि धारा 8 केवल

पॉलिसी धारकों को सुरक्षा जमा का एक हिस्सा डिक्री से कुर्क करने पर विचार करता है, यदि वह किसी अन्य तरीके से अपने ऋण का तुष्ट कराने में विफल रहते हैं, उदाहरण के लिए यह उन तीसरे पक्षों पर विचार नहीं करता है जिनके पास बीमाकर्ता के विरुद्ध आदेश है, जैसे की कंपनी (जो अपने मोटर बीमा व्यवसाय में पॉलिसी धारकों को एक निश्चित सीमा तक तीसरे पक्ष के जोखिम के खिलाफ क्षतिपूर्ति करती है) ऐसा करती है। ऐसे तीसरे पक्ष किसी भी परिस्थिति में जमा राशि का कोई भी हिस्सा कुर्क नहीं करा सकते। धारा 8 केवल पॉलिसी धारकों की पॉलिसी पर देय ऋण के संबंध में बीमाकर्ता के लिए अंतिम उपाय में इसकी कुर्की की अनुमति देता है, लेकिन धारा 2 डी ऐसे मामले में जिसमें तीसरे पक्ष की मोटर बीमा व्यवसाय के संबंध में बीमाकर्ता की देनदारी होगी जिसे धारा 7 के तहत जमा के किसी भी हिस्से की कुर्की से पूरा नहीं किया जा सकता। इसके अलावा पॉलिसी धारकों के आदेशों के संबंध में भी जमा राशि तभी कुर्क की जा सकती है जब धन की वसूली अन्य सभी तरीके से विफल हो जाए। इन परिस्थितियों में यह शायद कहा जा सकता है कि तथ्य यह है कि यह जमा बीमाकर्ता की देनदारियों को पूरा करने के लिए अन्यथा प्रावधान है। पॉलिसी धारक इस जमा राशि को तब तक कुर्क नहीं करा सकते जब तक कि वह पहले अन्य सभी उपायों को प्रयोग में नहीं ले लेते, भले ही उन्हें डिक्री मिल गई हो, और भले ही बीमाकर्ता ने उनके दावे को स्वीकार कर लिया और वह भुगतान करना चाहता है तो भी वह धारा 7 जमा राशि

से ऐसा नही कर सकता। तीसरे पक्ष के लिए धारा 8 के प्रावधानों के अनुसार जिनके पास बीमाकर्ता के विरुद्ध डिकी हो सकती है लेकिन वे जमा राशि को कुर्क नहीं करा सकते, यह विधायिका का इरादा नहीं हो सकता कि जब वास्तव में बीमाकर्ता को उसकी देनदारियों पर अधिनियम के सभी प्रावधानों से छूट दी गया। अन्यथा ऐसे प्रावधान में धारा 7 के तहत सुरक्षा हेतु जमा शामिल होनी चाहिए, जब किसी पॉलिसी धारक के लिए उस जमा राशि से अपना ऋण चुकाना इतना कठिन हो गया हो और जब यह स्पष्ट हो कि कोई तीसरा पक्ष किसी भी तरह से जमा राशि को कुर्क नहीं कर सकता है तो इन परिस्थतियों में हमारी राय है कि बीमाकर्ता धारा 2 डी के प्रावधान व अधिनियम के सभी प्रावधानों के अधीन होगा जब तक कि बंद किये गए व्यवसाय के संबंध में भारत में उसकी देनदारियां असंतुष्ट रहती हैं या अन्यथा प्रावधान नहीं किया जाता है जो जमा धारा 7 में उल्लेखित अनुसार नहीं हो सकती। यह सत्य है कि धारा 9 में यह प्रावधान है कि बीमाकर्ता अदालत को संतुष्ट करने के बाद जमा राशि वापस ले सकता है कि उसने अपनी देनदारियों को संतुष्ट कर दिया है या अन्यथा प्रावधान किया है, लेकिन यहां पर स्पष्ट रूप से धारा अन्यथा प्रावधान जमा राशि के अलावा अन्य का होना चाहिए। इसके अलावा जब बीमाकर्ता अन्यथा

प्रावधान करने पर अपनी जमा राशि वापस लेना चाहता है तो उसे न्यायालय को संतुष्ट करना होगा कि अन्यथा प्रावधान पूरी तरह से किया गया है और न्यायालय इस मामले की जांच करने की स्थिति में होगा,

हालांंकि इसका मतलब यह नहीं है कि यदि बीमाकर्ता इसका लाभ नहीं लेना चाहता है तो धारा 9 में वह इस धारा की शर्तों को प्रस्तुत किये बिना कह सकता है कि उसने अन्यथा प्रावधान किया है जो धारा 7 के तहत जमा के तहत किये गये हैं और देनदारियों से अधिक है। यह आग्रह किया जाता है कि यह कठिन है, उदाहरण के लिए एक बीमाकर्ता के लिए जिसके पास बड़ी जमाराशि है और जिसकी देनदारियां छोटी है वह धारा 2डी के प्रयोजनों के लिए अपनी जमाराशि पर वापस आने में सक्षम नहीं होना चाहिए, हालांकि हमें इस तरह के मामले में कोई कठिनाई नहीं दिखती क्योंकि अगर यह सच है कि बीमाकर्ता की जमाराशि बड़ी है और उसकी देनदारियां छोटी है तो वह हमेशा इसका लाभ उठा सकता है। अधिनियम की धारा 9 और अदालत द्वारा जांच के लिए प्रस्तुत कर अपनी देनदारियों को पूरा करने के लिए आवश्यक छोटी राशि जमा करने के बाद अपनी जमाराशि वापस ले लें, इसलिए हमारी राय है कि जब धारा 2डी बंद हो चुके बीमा व्यवसाय की देनदारियों के लिए संतुष्टि या अन्यथ प्रावधान की बाता करता है तो धारा 7 के तहत जमा की गई राशि के अलावा ऐसी संतुष्टि या अन्यथा प्रावधान पर विचार करता है। इस मामले में यह विवाद नहीं है कि कुछ देनदारियां अभी भी लम्बित हैं, इसमें कोई विवाद नहीं है

कि वह संतुष्ट नहीं है और सुरक्षा जमाराशि के बावजूद उनके लिए कोई प्रावधान नहीं किया गया है, ऐसा प्रतीत होता है कि जुलाई, 1957 में जब आदेश दिया गया था तब भी यह स्थिति थी। इन परिस्थितियों में यह

आदेश अच्छा है और कंपनी द्वारा इस पर प्रश्न नहीं उठाया जा सकता, इसलिए अपील निष्फल हो जाती है और इसे हर्जे सहित खारिज किया जाता है। अपील खारिज।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल '**सुवास**' की सहायता से अनुवादक **बृजेश पंवार** न्यायिक अधिकारी द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण : यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।